अध्याय – 3
राजस्थान की लोक कलाएँ

लोक कला की समस्त विधाओं में लोकनृत्यों, लोकनाट्यों, लोक वाद्यों, लोक संगीत इत्यादि का महत्वपूर्ण स्थान है। इन विधाओं में लोक जीवन, मनोरंजन और संस्कृति का अनुपम रूप निहारने को मिलता है। इन कलाओं के प्रणेता न ऋषि–मुनि थे और न ही इनके लिए कोई ग्रंथ रचे गये। मानव के क्रियाकलापों, सामुदायिक वातावरण और परम्परागत अभ्यास ने इन कलाओं को जन्म दिया तथा जीवित रखा। मौखिक स्मरण और लौकिक रूढ़ियों से ढली यह कलाएँ आज भी जीवित हैं। युग–युगान्तर से पनपी यह कलाएँ राजस्थान की संस्कृति की प्राण बनी हुई हैं। इन कला–विधाओं का संबंध ग्राम्य पृष्ठभूमि और आदिवासियों से होने के कारण इन्हें 'लोककलाएँ' कहा जाता है। इनमें राजस्थान के व्यावहारिक जीवन का जीवन्त रूप दिखाई देता हैं। यदि राजस्थान को लोक कलाओं का अजायबघर कहा जाये तो अतिशयोक्ति न होगी। राजस्थान के ठेठ ग्रामीण जीवन को समझना है तो आपको उनकी भाषा के साथ उनके मनोरंजन के तरीकों की जानकारी प्राप्त करनी होगी। लोक कलाओं ने उनको कभी भी अकेलापन महसूस नहीं होने दिया। जीवन में खुशी के क्षणों को राजस्थान के निवासियों ने लोक कलाओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। यही कारण है कि विपरीत परिस्थितियों में भी उनकी जीने की इच्छा बनी रही।

लोक नृत्य

लोक नृत्यों से राजस्थान की पहचान पूरे देश में है। लोक नृत्यों में शास्त्रीय नृत्य की तरह ताल, लय आदि का कड़ाई से पालन नहीं होता। समय–समय पर प्रसंग विशेष के अनुरूप जनमानस द्वारा रचे गये लोक नृत्यों में मानव जीवन का सहज चित्रण होता है। लोकोत्सव, पर्व, तीज–त्योहार, लोकानुष्ठान आदि के मोकों पर रंग–बिरंगी वेशभूषा और स्थान विशेष की परम्पराओं के अनुसार लोकनृत्य परम्परा शताब्दियों से चली आ रही है। मारवाड़ का डांडिया, मारवाड़ व मेवाड़ का गैर, शेखावाटी का गीदड़, जसनाथी सिद्धों का अग्नि नृत्य, अलवर–भरतपुर का बम नृत्य, लगभग पूरे प्रदेश में प्रचलित घूमर, चंग एवं डांडिया राजस्थान के लोकप्रिय नृत्य हैं। राजस्थान की जनजातियों के लोक नृत्यों में भीलों के गवरी, गरासियों के वालर, गूजरों का चरी नृत्य, रामदेवजी के भोपों का तेरहताली नृत्य, पेशेवर लोकनर्तकों का भवाई नृत्य आदि रंग–बिरंगी छटा बिखरते हैं। राजस्थान में प्रचलित प्रमुख लोक नृत्यों का परिचय निम्नांकित है –

अग्नि नृत्य

'अग्नि नृत्य' जसनाथी सम्प्रदाय का प्रसिद्ध नृत्य है। इसका उद्‌गम स्थल बीकानेर जिले के कतरियासर गाँव में हुआ। यह मुख्यतः चूरू, नागौर और बीकानेर की जाट जाति का नृत्य है। यह नृत्य धधकते अंगारों पर पुरुषों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है, नृत्यकार अंगारों से 'मतीरा फोड़ना' का कार्य करते हैं। आग के साथ राग और फाग खेलना जसनाथी सम्प्रदाय के अलावा कहीं भी देखने को नहीं मिलता है।

ईडाणी नृत्य

ईडाणी कालबेलिया जाति का प्रसिद्ध नृत्य है। इसमें पूँगी व खंजरी वाद्य यन्त्रों का प्रयोग किया जाता है। यह गोलाकार आकृति में होता है। ईडाणी में औरतों की पोशाक व मणियों की सजावट कलात्मक होती है।

कच्छी घोड़ी

कच्छी घोड़ी शेखावाटी क्षेत्र का प्रसिद्ध नृत्य है। इसमें चार–चार व्यक्ति आमने–सामने खड़े होते हैं, जो आगे–पीछे बढ़ने का कार्य तीव्र गति से करते हैं। इस नृत्य

में पंक्ति का तीव्र गति से बनने का और बिखरने का दृश्य फूल की पंखुड़ियों के खुलने का आभास दिलाता है।

गरबा नृत्य

गरबा बाँसवाड़ा और डूँगरपुर क्षेत्र का प्रसिद्ध नृत्य है। इसका स्वरूप रास, डांडिया गवरी नृत्यों से अभिव्यक्त होता है। इसमें गीतों की लय भक्तिपूर्ण होती है। यह नवरात्रों में विशेष रूप से किया जाता है। इसमें समाज बिना भेदभाव से नृत्य का आनन्द लेता है। इसमें लोक जीवन, भक्ति एवं शक्ति का चित्रण किया जाता है।

गवरी नृत्य

गवरी मेवाड़ क्षेत्र के भीलों के द्वारा किया जाने वाला प्रसिद्ध नृत्य है। यह सावन–भादों माह में किया जाता है। इसमें पार्वती की पूजा की जाती है। इस नृत्य में मांदल और थाली के प्रयोग के कारण इसे 'राई नृत्य' के नाम से भी जाना जाता है। यह केवल पुरुषों का नृत्य है। शिवजी की अर्द्धांगिनी गौरी के नाम से इसका नाम गवरी पड़ा।

गीदड़ नृत्य

होली के अवसर पर किया जाने वाला 'गीदड़' शेखावाटी क्षेत्र का प्रसिद्ध नृत्य है। इसमें ताल, सुर और नृत्य का समन्वय देखने को मिलता है। इसे केवल पुरुष ही प्रस्तुत करते हैं। इस नृत्य के मुख्य वाद्य यंत्र नगाड़ा, ढोल, डफ व चंग हैं। नगाड़े की चोट पर पुरुष अपने दोनों हाथों के डण्डे को परस्पर टकराते हुए नृत्य करते हैं। यह नृत्य समाज की एकता का सूत्रधार है।

गैर नृत्य

गैर मेवाड़ क्षेत्र का प्रसिद्ध नृत्य है, इसकी लोकप्रियता बाड़मेर में भी है। यह होली के अवसर पर पुरुषों को उल्लास व स्फूर्ति प्रदान करता है। पुरुष लकड़ी की छड़ियाँ लेकर गोल घेरे में नृत्य करते हैं। घेरे में नृत्य करने के कारण इसे 'गैर' नाम से जाना जाता है। कृषक फसल काटने से नई फसल की बुवाई तक 'गैर' करते रहते है। यह मुख्यतः भील जाति की संस्कृति को प्रदर्शित करता है।

घुड़ला नृत्य

घुडला, जो अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त है, जोधपुर का प्रसिद्ध नृत्य है। इसमें जयपुर के मणि गांगुली और उदयपुर के देवीलाल सामर का मुख्य योगदान है। राजस्थान संगीत नाटक अकादमी के भूतपूर्व मंत्री कमल कोठारी ने घुड़ला को राष्ट्रीय मंच प्रदान किया, जिससे राजस्थानी कला आमजन में लोकप्रिय बनी। इसमें छिद्रित मटके में दीपक जलता रहता है, उसे स्त्री अपने सिर पर उठाकर और सुन्दर श्रृंगार से घूमर और पणिहारी अन्दाज में चक्कर बनाकर नृत्य करती है और साथ में गीत भी गाती है।

घूमर नृत्य

नृत्यों का सिरमौर घूमर राज्य नृत्य के रूप में प्रसिद्ध है। यह मांगलिक अवसरों, पर्वों आदि पर महिलाओं द्वारा किया जाता है। स्त्री–पुरुष घेरा बनाकर नृत्य करते हैं। लहंगे के घेरे को 'घूम्म' कहते हैं। इसमें ढोल, नगाड़ा और शहनाई आदि वाद्य यन्त्रों का प्रयोग किया जाता है। इस नृत्य में बार–बार घूमने के साथ हाथों का लचकदार संचालन प्रभावकारी होता है।

चंग नृत्य

चंग शेखावाटी क्षेत्र का प्रसिद्ध नृत्य है। इसमें प्रत्येक पुरुष चंग के साथ नृत्य करते हैं। यह मुख्यतः होली के दिनों में किया जाता है। चंग को प्रत्येक पुरुष अपने एक हाथ से थाम कर और दूसरे हाथ से कटरवे का ठेका बजाते हुए वृत्ताकार घेरे में नृत्य करते हैं। घेरे के मध्य में एकत्रित होकर धमाल और होली के गीत गाते हैं।

चकरी नृत्य

चकरी हाड़ौती क्षेत्र का प्रसिद्ध नृत्य है। यह कंजर, कालबेलिया और बेड़ियाँ जाति की कुंवारी लड़कियों द्वारा किया जाता है। इस नृत्य की प्रख्यात नृत्यांगना 'गुलाबो' है। गुलाबो ने 'पेरिस' में आयोजित 'भारतीय

उत्सव' में अपनी कला का प्रदर्शन किया था। इसमें नृत्य करने वाली लड़कियाँ चंग की ताल पर तेज गति से चक्राकार रूप में नृत्य करती हुई चकरी की तरह घूमती है।

चरी नृत्य

'चरी' किशनगढ़ (अजमेर) का प्रसिद्ध नृत्य है। चरी नृत्य में बांकिया, ढोल एवं थाली का प्रयोग किया जाता है। इसे गुर्जर जाति पवित्र मानती है। स्त्रियाँ अपने सिर पर सात चरियाँ रखकर नृत्य करती हैं। इनमें से सबसे ऊपर की चरी में काकड़ा के बीज में तेल डालकर जलाये जाते हैं।

डांडिया नृत्य

डांडिया मारवाड़ का प्रसिद्ध नृत्य है। यह होली के बाद किया जाता है। फाल्गुन की शीतल चाँदनी में नर्तक नगाड़ा लेकर मैदान में बैठ जाता है और इस मैदान के चौक के बीच में शहनाई वाले तथा गवैये (गायक) बैठते हैं। पुरुष 'लोक ख्यात' को लय से गाते हैं। नर्तक बराबर लय से डांडिया टकराते हुए वृत्त में आगे बढ़ते जाते हैं।

तेरहताली नृत्य

तेरहताली नृत्य में मंजीरा, तानपुर व चौतारा वाद्य यन्त्रों का प्रयोग किया जाता है। इसका प्रदर्शन उत्सवों व मेलों में देखने को मिलता है। नर्तकियाँ ध्वनि की लय को सुनने के पश्चात् बैठकर नृत्य करती हैं। इसमें तेरह मंजीरों की आवश्यकता होती है, जिसमें से नौ मंजीरे दायें पाँव पर, दो हाथों की कोहनी के ऊपर और एक–एक दोनों हाथों में होते हैं। हाथ वाले मंजीरे के टकराने से ध्वनि उत्पन्न होती है। यह नृत्य मुख्य रूप से रामदेव जी के मेले में देखने को मिलता है। कामड जाति तेरहताली नृत्य के साथ रामदेवजी का यशोगान करती है।

बम नृत्य

बम नृत्य भरतपुर और अलवर क्षेत्र का प्रसिद्ध नृत्य है। यह नई फसल आने और फाल्गुन की मस्ती पर गाँवों में पुरुषों द्वारा किया जाता है। इस नृत्य में नगाड़े, थाली, चिमटा, ढोलक आदि वाद्य यन्त्रों का प्रयोग किया जाता है। बम एक बड़ा नगाड़ा होता है, जिसे दोनों हाथों के मोटे डण्डे से बजाते हैं। बम की ध्वनि से रसिया गायन किया जाता है, जिसे बमरसिया भी कहा जाता है।

भवाई नृत्य

भवाई उदयपुर संभाग का प्रसिद्ध नृत्य है। यह शंकरिया, सूरदास, बीकाजी और ढोला मारू नाच के रूप में प्रसिद्ध है। इसमें अनूठी नृत्य अदायगी, शारीरिक क्रियाओं का अद्‌भुत चमत्कार और लयकारी की विविधता आकर्षक होती है। इसमें तेज लय के साथ सिर पर सात–आठ मठकी रखकर नृत्य करना, जमीन पर गिरे रूमाल को मुँह से उठाना, गिलासों पर नाचना, थाली के किनारों पर नृत्य करना आदि क्रियाएँ की जाती है।

वालर नृत्य

वालर सिरोही क्षेत्र का प्रसिद्ध नृत्य है। बिना वाद्य यन्त्रों के इसे गरासिया जाति के व्यक्ति करते हैं। यह नृत्य स्त्री–पुरुषों द्वारा विवाह के अवसर पर किया जाता है। इस वालर नृत्य का प्रारम्भ पुरुष अपने हाथों में तलवार या छाता लेकर करते हैं।

शंकरिया नृत्य

शंकरिया नृत्य कालबेलिया जाति के सपेरों द्वारा किया जाता है। यह प्रेम कहानी पर आधारित होने के कारण स्त्री–पुरुष दोनों के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। इसमें अंग संचालन अति सुन्दर होता है।

लोक नाट्य

राजस्थान में लोक जीवन के विभिन्न रूपों की अभिव्यक्ति के लिए लोक नाट्य रचे गये हैं और उनका अपने तरीके से मंचन किया जाता है। ये लोक नाट्य जन जीवन को आह्लादित करते रहे हैं। लोक नाट्यों में दर्शकों और अभिनेता के बीच दूरियाँ प्रायः नहीं होती है। गीतों एवं नृत्य की प्रधानता के लिए लोकनाट्यों में प्रतीकात्मक साज–सज्जा से ही पात्रों की पहचान हो जाती है। हाल ही के वर्षों में ऐतिहासिक, पौराणिक, लोक कथाओं के साथ

वर्तमान राजनीति एवं शासन व्यवस्था को भी लोक कलाकारों द्वारा लोक नाट्यों में व्यक्त किया जाने लगा है। अंचल विशेष की संस्कृति से जुड़े लोकनाट्यों में पुरुष अथवा स्त्रियाँ या दोनों भाग लेते हैं। कई बार पुरुष ही स्त्री की वेशभूषा–आभूषण धारण कर अभिनय करते हैं। अलवर और भरतपुर के लोक नाट्यों में हरियाणा तथा उत्तर प्रदेश की लोक संस्कृतियों का मिला–जुला रूप देखने को मिलता है। धौलपुर एवं सवाई माधोपुर के लोक नाट्यों पर स्पष्टतः ब्रजभूमि की संस्कृति का प्रभाव झलकता है। राजस्थान के रेगिस्तानी क्षेत्र में जीविका के लिए कठिन परिश्रम करने वाली जातियों में मनोरंजन का कार्य नट, भाट आदि पेशेवर जनजातियों के लोग करते हैं। इस क्षेत्र के लोगों के वार्तालाप व्यंग्य–विनोद प्रधान होते हैं, जिससे वे लोगों को हँसने के लिए मजबूर करते हैं। पहाड़ी इलाकों जैसे सिरोही, डूँगरपुर, उदयपुर, बारां आदि क्षेत्रों में रहने वाली गरासिया, भील, मीणा, बंजारे, सहरिया इत्यादि जनजातियाँ रंगमय संस्कृति की छवि प्रस्तुत करती हैं। राजस्थान में निम्न लोक नाट्य प्रचलन में हैं –

ख्याल

ख्याल 18वीं सदी के प्रारम्भ से ही राजस्थान के लोक नाट्यों में सम्मिलित हैं। इन ख्यालों की विषय–वस्तु पौराणिक है, जिनके वीराख्यान में ऐतिहासिक तत्त्व भी मिलते हैं। भौगोलिक अन्तर के कारण इन ख्यालों ने भी परिस्थितियों के अनुसार अलग–अलग रूप ग्रहण कर लिये हैं। इन ख्यालों में भाषा की भिन्नता नहीं है, लेकिन इनमें शैलीगत भिन्नता है। इन ख्यालों में संगीत के साथ–साथ नाटक, नृत्य एवं गीतों की भी प्रधानता है। गीत मुख्यतः लोकगीतों या शास्त्रीय संगीत पर आधारित होते हैं। ख्यालों में से कुछ की विशेषताएँ इस प्रकार हैं –

(i) कुचामनी ख्याल

कुचामनी ख्याल के प्रवर्तक विख्यात लोक–नाट्यकार 'लच्छीराम्' है। इस ख्याल में उन्होंने अपनी शैली का समावेश किया। इस शैली की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

(i) इसका रूप गीत–नाट्य जैसा होता है।
(ii) इसमें लोकगीतों की प्रधानता है।
(iii) लय के अनुसार ही नृत्य में ताल होती है।
(iv) इसे खुले मंच पर प्रस्तुत किया जाता है।
(v) इनमें पुरुष पात्र ही स्त्री चरित्र का अभिनय करते हैं।
(vi) इस ख्याल में संगत के लिए ढोल एवं शहनाई वादक आदि सहयोगी होते हैं।
(vii) इसमें नर्तक ही गाने को गाते हैं। इस ख्याल में चाँद नीलगिरि, राब रिड़मल तथा मीरा मंगल प्रमुख है।

(ii) जयपुरी ख्याल

सभी ख्यालों की प्रकृति मिलती–जुलती है, परन्तु जयपुरी ख्याल की अपनी अलग विशेषता है, जो इस प्रकार है –

(i) इसमें स्त्री पात्रों की भूमिका स्त्रियाँ भी निभाती हैं।
(ii) इस ख्याल में नये प्रयोगों की महती संभावनाएँ हैं।
(iii) यह शैली रूढ़ नहीं है, मुक्त तथा लचीली है।
(iv) इसमें कविता, संगीत, नृत्य तथा गान व अभिनय का सुन्दर समावेश होता है।
(v) इस शैली के मुख्य लोकप्रिय ख्याल हैं – जोगी–जोगन, कान–गुजरी, मियाँ–बीबू, पठान, रसीली तम्बोलन।

(iii) तुर्रा कलंगी

मेवाड़ के शाह अली तथा तुकनगीर नामक संत पीरों ने तुर्रा कलंगी ख्याल की रचना की और इसे यह नाम दिया। इसमें 'तुर्रा' को महादेव 'शिव' तथा 'कलंगी' को पार्वती का प्रतीक माना जाता है।

तुकनगीर 'तुर्रा' के पक्षकार थे और शाह अली 'कलंगी' के। इनके माध्यमों से 'शिव–शक्ति' के विचार लोगों तक पहुँचे। इनके प्रचार का मुख्य माध्यम काव्यमय रचनाएँ थी, जिसे लोक समाज में 'दंगल' के नाम से जानते हैं। तुर्रा कलंगी का ख्याल राजस्थान और मध्यप्रदेश में लोकप्रिय है। इस ख्याल की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं –

(i) इसकी प्रकृति गैर व्यावसायिक है।

(ii) इसमें रंगमंच की भरपूर सजावट होती है।

(iii) इसमें नृत्य की ताल सरल होती है।

(iv) इसके बोल लयात्मक एवं नये है।

(v) तुर्रा कलंगी ऐसा लोक नाट्य है, जिसमें दर्शकों के भाग लेने की अधिक सम्भावना होती है।

(vi) 'तुर्रा कलंगी' के मुख्य केन्द्र घोसुण्डा, चित्तौड़, निम्बाहेड़ा तथा नीमच हैं। इन्हीं स्थानों पर इसके सर्वश्रेष्ठ कलाकार चेतराम, हमीद बेग, ताराचन्द तथा ठाकुर ओंकारसिंह आदि हैं। 'सोनी जयदयाल' इसके सर्वाधिक लोकप्रिय कलाकार थे।

(iv) शेखावाटी ख्याल

इस शैली के मुख्य खिलाड़ी 'नानूराम' थे। वे अपने पीछे स्वरचित ख्यालों की एक धरोहर छोड़ गए हैं। उनमें से कुछ नाम इस प्रकार हैं – हीर रांझा, हरीचन्द, भर्तृहरि, जयदेव कलाली, ढोला मरवण तथा आल्हादेव।

इस लोक–नाट्य शैली की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं –

(i) प्रभावी चंचल संचालन।

(ii) शैली, भाषा, मुद्रा और गीत गायन में दक्षता।

(iii) वाद्यवृन्द की उचित संगत, जिसमें मुख्य हारमोनियम, सारंगी, शहनाई, बाँसुरी, नगाड़ा तथा ढोलक का प्रयोग होता है।

शेखावाटी में यह ख्याल साहित्यिक एवं रंगमंच के रूप में लोकप्रिय है। इन ख्यालों से लाखों लोग मनोरंजन करते है। नाथूराम के शिष्य दूलिया राणा के परिवार के व्यक्ति ही इन ख्यालों में होने वाले व्यय को वहन करते है और श्रेष्ठ खिलाड़ियों को पुरस्कार वितरण करते हैं।

नौटंकी

नौटंकी का शाब्दिक अर्थ है 'नाटक का अभिनय करना।' नौटंकी की करौली, भरतपुर, धौलपुर, अलवर, गंगापुर तथा सवाई माधोपुर आदि क्षेत्रों में प्रस्तुत की जाती है। इस नाट्य को भरतपुर में हाथरस शैली में प्रस्तुत करते हैं तथा इसमें सारंगी, शहनाई, ढपली आदि वाद्य यन्त्रों का प्रयोग किया जाता है। इसे पुरुष एवं महिलाएँ प्रस्तुत कर सकती हैं। इन नाट्यों में अमर सिंह राठौड़, आल्हा–ऊदल, हरिश्चन्द्र तारामती, सत्यवान–सावित्री एवं लैला–मंजनू आदि नाटकों के मंचन किये जाते हैं। नौटंकी गाँवों में अधिक लोकप्रिय है। इसे सामाजिक उत्सवों, मेलों एवं शादियों के अवसर पर प्रस्तुत किया जाता है।

रम्मत

बीकानेर तथा जैसलमेर क्षेत्रों में होली और सावन के अवसर पर होने वाली लोक काव्य प्रतियोगिताओं से रम्मत नाट्य का उद्भव हुआ। इसमें राजस्थान के सुविख्यात लोक नायकों एवं महापुरुषों की ऐतिहासिक–धार्मिक काव्य रचना को मंच पर प्रस्तुत किया जाता है। इन रम्मतों के रचयिता मनीराम व्यास, तुलसीदास, फागु महाराज, सुआ महाराज और तेज कवि (जैसलमेरी) हैं।

तेज कवि ने रंगमंच को क्रान्तिकारी नेतृत्व प्रदान किया। उसने अपनी रम्मत का अखाड़ा श्री कृष्ण कम्पनी से शुरू किया। 1943 ई. में तेजकवि ने 'स्वतंत्र बावनी' की रचना कर इसे महात्मा गाँधी को भेंट किया। तेज कवि पर ब्रिटिश सरकार ने निगरानी रखी तथा कुछ समय पश्चात् उन्हें गिरफ्तार करने का वारन्ट जारी कर दिया। जब उन्हें गिरफ्तारी के वारन्ट की सूचना मिली, तो वह पुलिस

कमिश्नर के घर गए और वहाँ जाकर उन्होंने ओजस्वी वाणी में कहा –

कमिश्नर खोल दरवाजा,
हमें भी जेल जाना है।
हिन्द तेरा है न तेरे बाप का,
हमारी मातृभूमि पर लगाया बन्दी खाना है।

रम्मत के मुख्य वाद्य नगाड़ा एवं ढोलक हैं। इसमें कोई भी रंगमंचीय सजावट नहीं होती है। इस मंच का स्तर ऊँचा होने के कारण बैठकर गीत गाये जाते हैं। इनका सम्बन्ध निम्नांकित विषयों से है –

चौमासा – वर्षा ऋतु का वर्णन

लावणी – **देवी**–देवताओं की पूजा से सम्बन्धित गीत

गणपति वंदना – गणपति की वन्दना।

रामदेव जी के भजन – रम्मत शुरू होने से पूर्व बाबा रामदेव का भजन गाया जाता हैं।

स्वांग

लोक–नाट्यों में स्वांग अधिक प्रसिद्ध है। इसका शाब्दिक अर्थ है किसी विशेष ऐतिहासिक, पौराणिक, लोक प्रसिद्ध या समाज में मान्य चरित्र तथा देवी–देवताओं की हूबहू वेश–भूषा धारण करते हुए उनके चरित्र की नकल करना। राज्य की कुछ जनजातियाँ स्वांग को अपना व्यवसाय मानती हैं। इसके कलाकार को बहरूपिया कहा जाता है। स्वांग का गाँवों में अधिक प्रचलन है। इसके प्रसिद्ध कलाकार जानकी लाल भांड (भीलवाड़ा) हैं।

फड़

भीलवाड़ा जिले का शाहपुरा कस्बा राजस्थान की परम्परागत लोक नाट्य एवं चित्रकला की विशिष्ट शैली 'फड़' के कारण राष्ट्रीय स्तर पर पहचाना जाता है। शाहपुरा के छीपा जाति के जोशी इस पट–चित्रण (फड़) में सिद्धहस्त हैं। भीलवाड़ा जिले के श्री लाल जोशी ने 'फड़' चित्रकला को राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पहचान दी है। लोक देवता देवनारायण की जीवनगाथा पर आधारित इनका संग्रह अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त है। 'फड़' कपड़े पर बने हुए चित्र होते हैं, जिनके माध्यम से किसी घटना या कथा का प्रस्तुतीकरण किया जाता है। फड़ का निर्माण 30 फुट लम्बे और 5 फुट चौड़े कपड़े पर किया जाता है। भोपा इस फड़ को दर्शकों के समक्ष प्रस्तुत करते हैं तथा भोपी इस फड़ के समक्ष नृत्य करती है। वह जो नृत्य करती है, उसके बारे में फड़ पर बने चित्र की ओर संकेत करती रहती है। इस समय भोपा रावणहत्था बजाता है। फड़ में अधिकतर लोक देवताओं, पाबूजी, देवनारायण जी, रामदेवजी व कृष्ण एवं माता दुर्गा के जीवन की घटनाओं व चमत्कारों पर आधारित विषयों का चित्रण होता है।

फड़ का वाचन राजपूत, गुर्जर, जाट, कुम्भकार व बलाई जाति के चारण भोपे करते हैं। ये फड़ को लकड़ी पर लपेट कर गाँव–गाँव जाकर पारम्परिक वस्त्र एवं वाद्य यंत्र के साथ थिरकते हुए वाचन करते है। यह कला परम्परा लोक नाट्य, गायन, वादन, मौखिक साहित्य, चित्रकला व लोकधर्म का एक संयोजन है। फड़ ग्रामीणों के सरलतम, विवरणात्मक व क्रमबद्ध कथन का माध्यम है।

लोक वाद्य

राजस्थान में लोक संगीत, लोक नृत्य एवं लोक नाट्यों का प्रचलन सम्भवतः सैकड़ों वर्षों से है। बिना वाद्य के संगीत सूना है। प्राचीन काल से ही वाद्य यन्त्रों का सम्बन्ध देवी–देवताओं के साथ स्थापित किया जाता रहा है, जैसे कृष्ण के साथ बांसुरी, सरस्वती के साथ वीणा, शिव के साथ डमरू, नारद के साथ एकतारा आदि। हमारे लिए यह उचित होगा कि हम राजस्थान के ग्रामीण अंचलों में सुदीर्घ काल से प्रचलित वाद्य यन्त्रों का परिचय प्राप्त करें।

अलगोजा

अलगोजा राजस्थान का राज्य वाद्य है। यह बाँसुरी

की तरह होता है। यह बाँस, पीतल और अन्य किसी भी धातु से बनाया जा सकता है। अलगोजा में स्वरों के लिए छः छेद होते हैं, जिनकी दूरी स्वरों की शुद्धता के लिए निश्चित होती है। वादक दो अलगोजे अपने मुँह में रखकर एक साथ बजाता है, एक अलगोजे पर स्वर कायम रखते हैं और दूसरे पर स्वर बजाये जाते है। जयपुर के पद्‌मपुरा गाँव के प्रसिद्ध कलाकार "रामनाथ चौधरी" नाक से अलगोजा बजाते हैं। अलगोजा जैसलमेर, जोधपुर, बाड़मेर, बीकानेर, जयपुर, सवाई माधोपुर एवं टोंक आदि क्षेत्रों में मुख्य रूप से बजाया जाता है। अलगोजा को वीर तेजाजी की जीवन गाथा, डिग्गीपुरी का राजा, ढोला मारू नृत्य और चक्का भवाई नृत्य में भी बजाया जाता है। इसका प्रयोग भील और कालबेलियाँ जातियाँ अधिक करती हैं।

इकतारा

इकतारा गोल तुम्बे में बाँस की डंडी फँसाकर बनाया जाता है। तुम्बे का एक हिस्सा काटकर इसे बकरे के चमड़े से मढ़कर निर्मित किया जाता है। बाँस पर दो खूँटियाँ होती हैं, जिन पर ऊपर–नीचे दो तार बँधे रहते हैं। इसका वादन तार पर उंगली से ऊपर–नीचे करके किया जाता है। इसको कालबेलियाँ, नाथ, साधु–संन्यासी आदि बजाते हैं।

कामायचा

कामायचा जैसलमेर और बाड़मेर क्षेत्र का प्रसिद्ध वाद्य है। यह सारंगी के समान होता है। इसकी तबली चौड़ी व गोल होती है। तबली पर चमड़ा मढ़ा होता है। कामायचा की ध्वनि में भारीपन और गूँज होती है। इसका प्रयोग मुस्लिम शेख अधिक करते है, जिन्हें 'मांगणियार' कहा जाता है।

खड़ताल

खड़ताल शब्द करताल से बना है। बाड़मेर क्षेत्र के प्रसिद्ध कलाकार सद्दीक खाँ खड़ताल बजाने में दक्ष हैं, इन्हें खड़ताल का जादूगर भी कहा जाता है। खड़ताल कैर व बबूल की लकड़ी से बना होता हैं। इसमें दो लकड़ी के टुकड़ों के बीच में पीतल की छोटी–छोटी तश्तरियाँ लगी रहती हैं। खड़ताल को इकतारा से बजाया जाता है। भक्तजनों व साधु–संतों द्वारा खड़ताल का प्रयोग किया जाता है।

चंग

शेखावाटी क्षेत्र में होली के अवसर पर चंग वाद्य बजाया जाता है, जो लकड़ी के गोल घेरे के रूप में होता है। चंग में एक तरफ बकरे की खाल होती है, जिसे दोनों हाथों से बजाया जाता है। चंग को कालबेलियाँ जाति के व्यक्ति बजाते हैं।

जंतर

जंतर वीणा के प्रारम्भिक रूप जैसा है। इसके दो तुम्बे होते हैं, जिसकी डाँड बाँस की बनी होती है, जिसमें मगर की खाल के 22 पर्दे मोम से चिपकाते हैं। इसके परदों के ऊपर पाँच या छः तार लगे होते हैं, जिन्हें हाथ की अंगुली एवं अंगूठे से बजाते हैं। इसे खड़े होकर गले में लटकाकर बजाते हैं। इसका बगड़ावतों की कथा कहने वाले भोपे प्रयोग करते हैं। इनके चित्र पर्दे को चित्रित कर संगत के साथ गाकर कहानी कहते हैं। इसे लोक देवता देवनारायणजी के भजन व गीत गाते समय प्रयोग करते हैं। इसका प्रचलन मेवाड़ क्षेत्र में अधिक है।

झांझ

यह शेखावाटी क्षेत्र का प्रसिद्ध वाद्य है। इसका आकार मंजीरे से बड़ा होता है। इसे कच्छी घोड़ी नृत्य में ताशे के साथ बजाते हैं।

ढोल

राजस्थानी लोक वाद्यों में ढोल महत्वपूर्ण है। इसके लोहे या लकड़ी के गोल घेरे पर दोनों ओर चमड़ा मढ़ा होता है। ढोल पर लगी रस्सी को कड़ियों के सहारे खींचकर कसा जाता है। वादक ढोल को अपने गले में लटकाकर लकड़ी के डण्डे से बजाता है। इसे मांगलिक अवसरों पर अधिक बजाते हैं। भीलों के गैर नृत्य, शेखावाटी

के कच्छी घोड़ी नृत्य और जालौर के ढोल नृत्य में विशेष रूप से इसका प्रयोग होता है।

तंदूरा

तंदूरा चार तार का होता है, जिसे चौतारा भी कहा जाता है। इसका निर्माण लकड़ी से होता है। इसके साथ मंजीरा, खड़ताल, चिमटा आदि वाद्य बजाये जाते हैं। इसका रामदेवजी के भोपे एवं कामड़ जाति के लोग अधिक प्रयोग करते हैं।

ताशा

ताशा को ताँबे की चपटी परात पर बकरे का पतला चमड़ा मढ़कर बनाया जाता है और इसे बाँस की खपच्चियों से बजाया जाता है। इसे मुसलमान लोग अधिक बजाते हैं।

नगाड़ा

नगाड़ा दो प्रकार का होता है छोटा और बड़ा। लोक नाट्यों में नगाड़े के साथ शहनाई बजायी जाती है। लोक नृत्यों में नगाड़ा की संगत के बिना रंगत नहीं आती है। यह युद्ध के समय अधिक बजाया जाता था।

पूंगी

पूंगी घीया तुम्बे की बनी होती है, तुम्बे का ऊपरी हिस्सा लम्बा और पतला तथा नीचे का हिस्सा गोल होता है। तुम्बे के निचले गोल हिस्से में से दो नलियाँ लगाई जाती है। इन नलियों में स्वरों के छेद होते है, जिनमें एक नली में स्वर कायम व दूसरी में स्वर निकाले जाते हैं। यह कालबेलियों व आदिवासी भील जातियों का प्रसिद्ध वाद्य है।

भपंग

भपंग मेवात क्षेत्र का प्रसिद्ध वाद्य है। इसका आकार डमरूनुमा होता है, जिसको एक ओर चमड़े से मढ़ते है तथा दूसरी ओर खुला छोड़ दिया जाता है। इसे चमड़े में छेद कर तार को एक खूँटी से बाँध देते हैं। वर्तमान में इसे प्लास्टिक के तंतु से बनाते हैं। इसे कांख में दबाकर बजाते हैं। इसमें तान को ढीला करके विभिन्न ध्वनियाँ निकालते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त जहुर खाँ इसके प्रसिद्ध कलाकार हैं।

मंजीरा

मंजीरा डूंगरपुर क्षेत्र का प्रसिद्ध वाद्य यंत्र है। यह पीतल व कांसे की मिश्रित धातु का गोलाकार रूप होता है। दो मंजीरों को आपस में घर्षित करके ध्वनि उत्पन्न की जाती है। यह निर्गुण भजन और होली के गीत के साथ तथा तन्दूरे एवं इकतारे के साथ भी बजाया जाता हैं। रामदेवजी के भोपे, कामड़ जाति एवं तेरह ताली नृत्य में मंजीरों का प्रयोग किया जाता है।

मशक

मशक चमड़े की सिलाई कर बनाया जाता है। इसमें एक ओर से मुँह से हवा भरी जाती है तथा दूसरी ओर नली के छेदों से स्वर निकाले जाते हैं। वादक एक ओर मुँह से हवा भरता है तथा दूसरी ओर दोनों हाथों की उंगलियों से स्वर निकालता है। इसकी ध्वनि पूँगी की तरह है। इसका प्रयोग भैरुजी के भोपे अधिक करते हैं।

मादल

मादल की आकृति मृदंग के समान होती है, जो मिट्टी से निर्मित होता है। इसे हिरण या बकरे की खाल से मढ़ा जाता है। मादल का एक मुँह छोटा और दूसरा मुँह बड़ा होता है। इसे मढ़ी खाल पर जौ का आटा चिपकाकर बजाया जाता है और साथ में थाली भी बजायी जाती है। भील गवरी नृत्य में इसको बजाते हैं।

रावण हत्था

रावण हत्था भोपों का मुख्य वाद्य है। पाबूजी की फड़ को बाँचते समय भोपें रावण हत्था का प्रयोग करते हैं। बनावट में यह बिलकुल सरल किंतु स्वर में सुरीला होता है।

इसे बनाने के लिए नारियल की कटोरी पर खाल मढ़ी जाती है, जो बांस के साथ लगी होती है। बांस में जगह–जगह खूंटियाँ लगा दी जाती हैं, जिनमें तार बंधे होते हैं। यह वायलिन की तरह गज से बजाया जाता है। रावण हत्था को ढफ भी कहा जाता है।

शहनाई

शहनाई शीशम या सागवान की लकड़ी से बनी होती है। यह आकार में चिलम के समान होती है। इसमें आठ छेद होते हैं। इसका पत्ता ताड़ के पत्ते से बना होता है। शहनाई को बजाने के लिए निरन्तर नाक से श्वास लेना पड़ता है। यह मांगलिक अवसरों पर विशेष रूप से बजाई जाती है। कभी–कभी लोक नाट्यों के साथ भी बजाई जाती है। मांगी बाई मेवाड़ की प्रसिद्ध शहनाई वादिका और मांड गायिका है।

सारंगी

बाड़मेर और जैसलमेर क्षेत्र की लंगा जाति द्वारा सारंगी का प्रयोग किया जाता है। सारंगी तत् वाद्य यन्त्रों में सर्वश्रेष्ठ है। यह सागवान, तून, कैर या रोहिड़े की लकड़ी से बनाई जाती है। इसमें 27 तार होते हैं तथा ऊपर की तांते बकरे की आंतों से बने होते है। इसका वादन गज से होता हैं, जो घोड़े की पूंछ के बालों से निर्मित होता है। इसे बिरोजा पर घिसकर बजाने पर ही तारों से ध्वनि उत्पन्न होती है। मारवाड़ के जोगियों द्वारा गोपीचन्द, भृर्तहरि, निहालदे आदि के ख्याल गाते समय इसका प्रयोग किया जाता है। मिरासी, लंगा, जोगी, मांगणियार आदि राजस्थानी कलाकार सारंगी के साथ ही गाते हैं।

लोक संगीत

लोक संगीत जन समुदाय के स्वाभाविक उद्‌गारों का प्रतिबिम्ब है। कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ टैगोर ने लोक गीतों को संस्कृति का सुखद सन्देश ले जाने वाली कला कहा है। महात्मा गाँधी के शब्दों में "लोक गीत ही जनता की भाषा है, लोक गीत हमारी संस्कृति के पहरेदार हैं।"

राजस्थान के विशिष्ट एवं विविध भौगोलिक परिवेश ने इस प्रदेश के लोक जीवन को सतरंगी स्वरूप प्रदान किया है। मध्यकाल में राजपूत राजाओं के संरक्षण में लोक कलाओं का निरन्तर विकास होता रहा है। लोक संगीत में यहाँ के लोक जीवन के सामाजिक व नैतिक आदर्शों, इतिहास के लोक नायकों, धार्मिक जीवन के नानाविध अंगों, विश्वासों, मूल्यों आदि का प्रकटीकरण देखा जा सकता है। जीवन का शायद ही प्रसंग होगा, जिससे सम्बन्धित लोक गीत यहाँ उपलब्ध न हो।

लोक संगीत का मूलाधार लोक गीत है, जिन्हें विभिन्न अवसरों एवं अनुष्ठानों पर सामूहिक रूप से गाया जाता है। लोक वाद्यों की संगति इनके माधुर्य की वृद्धि करती है। कभी गीत के भावों को नृत्य द्वारा भी साकार किया जाता है। कई बार शासक अथवा प्रश्रयदाता की प्रशस्ति में भी गीत रचे गये। कई जातियों ने व्यावसायिक दृष्टि से गीत रचने एवं गाने में विशिष्ट दक्षता प्राप्त कर ली है।

राजस्थान में लोक संगीत में राग–सौरठ, देश आदि का अधिक प्रयोग हुआ है। तालों में दादरा, रूपक, कहरवा ही अधिक प्रयोग में लायी जाती है। यद्यपि लोक गीतों में रागों का पूर्ण दिग्दर्शन नहीं हो पाता, फिर भी इनकी प्रस्तुति में अद्‌भुत लयात्मकता होती है।

लोक गीत कई विषयों से सम्बन्धित है, जैसे – संस्कार, त्योहार–पर्व, ऋतु, देवी–देवता इत्यादि। संस्कारों में ज्यादातर गर्भधारण, जन्म, विवाह, विशिष्ट मेहमानों का विशेष अवसरों पर पधारना आदि को शामिल किया जा सकता है। पाणिग्रहण संस्कार पर सर्वाधिक गीत गाये जाते हैं।

विवाह से पूर्व दुल्हा–दुल्हन की प्रेमाकांक्षा की व्यंजना 'बना–बनी' के गीतों में मिलती है। वर निकासी के समय 'घुड़–चढ़ी' की जो रस्म होती है, उसे राजस्थान में लोक गीतों के माध्यम से सुन्दर अभिव्यंजना दी गई है। वधू के घर की स्त्रियों द्वारा वर की बारात का डेरा देखने

जाने का प्रसंग राजस्थान के 'जला' गीतों में देखने को मिलता है। परिवार में बालक जन्म के अवसर पर गाये जाने वाले गीत 'जच्चा' कहे जाते हैं। इनमें साधारणतः गर्भिणी की प्रशंसा, वंशवृद्धि का उल्लास और शिशु के लिए मंगलकामना की जाती है।

त्योहार व पर्व–गीतों में गणगौर, तीज, होली, राखी, मकर संक्रान्ति, दीपावली आदि के अवसर पर गाये जाने वाले अनेक गीत हैं। गणगौर व तीज राजस्थान के विशेष पर्व हैं और अत्यधिक उल्लास–उमंग से मनाये जाते हैं। गणगौर का पर्व होलिका दहन के पश्चात् चैत्रमास में 16 दिन तक कुँवारी कन्याओं व सधवा स्त्रियों द्वारा अनुष्ठानपूर्वक आयोजित किया जाता है। लड़कियाँ प्रातः काल की वेला में जलाशय से जल भरकर लाती है और जल एवं फूलों से गणगौर की पूजा करके अपने भावी जीवन में सुख–सौन्दर्य की कामना करती हैं। गौर पार्वती का ही रूप है जिसे पूजकर सुहागन स्त्रियाँ अखण्ड सौभाग्य की कामना करती है। गणगौर का प्रसिद्ध गीत इस प्रकार है।

खेलण दो गणगौर भँवर म्हानें खेलण दो गणगौर,
म्हारी सखियाँ जोवे बाट हो भँवर म्हाने खेलण दो गणगौर।

गणगौर व तीज के समय घूमर नृत्य राजस्थान की पहचान बन गया है। रंग–बिरंगे लहरियों से सुसज्जित स्त्रियों का घूमर नृत्य देखते ही बनता है, गीत इस प्रकार है –

म्हारी घूमर छे नखराली ए मा गोरी
घूमर रमवा म्हे जास्याँ ।

शेखावाटी एवं बीकानेर क्षेत्र के होलिकात्सव के गीत अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। गीदड़ एवं गैर नृत्यों के साथ होलिकात्सव के गीत गाया जाना सर्वविदित है।

लोक देवताओं में तेजाजी, देवजी, पाबूजी, गोगाजी आदि ऐसे ऐतिहासिक वीर पुरुष माने जाते हैं, जिन्होंने परमार्थ के लिए अपना सब कुछ न्योछावर कर दिया। अतः उनके गुणगान करते हुए अनेक भजन–गीत तन्मयता से गाये जाते हैं। मीरां के भजनों की लोकप्रियता से सभी परिचित हैं। भरतपुर क्षेत्र में ब्रज संस्कृति के प्रभाव से कृष्ण लीलाओं के गान और करौली क्षेत्र में केलादेवी भक्ति के लांगुरिया गीत लोकप्रिय हैं। लोक गीतों के सम्बन्ध में यह खोजपरक तथ्य है कि इन गेय पदों के द्वारा अनपढ़ ग्राम्य जन भी ज्ञान के गूढ़ रहस्यों एवं गीत में समाहित संगीत लहरियों को सहज ही हृदयगंम कर लेता हैं।

स्वर, ताल और लय में बद्ध होकर लोकसंगीत की धुनें मिलन–विरह, हास्य–व्यंग, रोष–भय, घृणा–प्रेम, राग–वैराग्य, वीरता–भीरुता आदि सूक्ष्म मनोभावों की मनोहारी अभिव्यक्ति करती है।

लोक संगीत में पेशेवर जातियों के अन्तर्गत लंगा जाति की विशिष्ट पहचान दूर–दराज तक है। बाड़मेर, जैसलमेर, जोधपुर आदि जिलों से सम्बद्ध लंगा जाति के लोकनायक अपने पारम्परिक वाद्यों के साथ प्रस्तुति देते हैं तो श्रोता मंत्रमुग्ध हो जाते हैं। सारंगी से मिलता–जुलता वाद्य कामायचा लंगाओं का प्रमुख वाद्य है। लंगा मांड शैली में अपने गीतों की प्रस्तुति देते हैं। लंगाओं का 'निंबूड़ा' तो अब इनकी पहचान से जुड़ गया है। स्वरों का सहज उतार–चढ़ाव और ताल की गूढ़ शिक्षा इन कलाकारों की धरोहर है।

राजस्थान में मांड गायन लोक संगीत की पहचान है। मांड शैली की सुविख्यात लोकनायिका पद्मश्री अल्लाह जिल्लाई बाई की आवाज से गूँजा 'पधारों म्हारे देस' पर्यटकों को खुला निमंत्रण है।

लोक संगीत की अन्य पेशेवर जातियों में ढोली, मिरासी, भोपा, जोगी, भवई मांगणियार, रावल, कंजर आदि प्रमुख हैं। संगीत द्वारा जीविकोपार्जन का उद्देश्य होने के कारण ही इन जातियों ने अपने गीतों को आकर्षक रूप प्रदान किया। शास्त्रीय संगीत की भाँति इन पेशेवर गायकों के गायन में स्थायी व अन्तरों का स्वरूप नहीं दिखायी देता

बल्कि ख्याल और झूमरी की तरह इन्हें छोटी–छोटी तानों, मुरकियों एवं विशेष झटकों से भी सजाया जाता है। स्वर माधुर्य के कारण राजस्थान के लोक संगीत एवं लोक वाद्यों का प्रयोग फिल्मी जगत एवं छोटे पर्दे के कार्यक्रमों में भी देखने को मिलता है।

हस्त शिल्प

राजस्थान में मानव सभ्यता के काल से ही हस्तशिल्प के प्रमाण मिलते हैं, जिनमें तीसरी शताब्दी ई. पू. के कलात्मक स्तम्भ शामिल हैं। मानव के विकास की यात्रा के साथ ही राजस्थान में हस्तशिल्प फला–फूला है। इतना ही नहीं, अपने बहुविविध स्वरूप के कारण राजस्थान को हस्तशिल्प का संग्रहालय कहा जा सकता है। प्राचीन ऐतिहासिक स्थलों जैसे कालीबंगा, आहड़ आदि के पुरातात्त्विक अवशेषों से तत्कालीन हस्तशिल्प जैसे मिट्टी की चूड़ियाँ, पॉलिश किये गये चमकदार बर्तन, औजार, वस्त्राभूषण आदि पर प्रकाश पड़ता है। आज राजस्थान के हस्तशिल्प ने अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप प्राप्त कर लिया है।

राजस्थान की बुनाई, छपाई, रंगाई, जवाहरात की कटाई, मीनाकारी, आभूषण निर्माण, बंधेज, गलीचा एवं नमदा की बुनाई, संगमरमर, हाथीदाँत, चंदन, लाख व काष्ठ के कलात्मक कार्य, चीनी मिट्टी का काम, धातु की कारीगरी, चमड़े की जूतियाँ व थैले, पुस्तकों पर कलात्मक लेखन, चूड़ियाँ निर्माण कार्य, टेराकोटा (मिट्टी से बनी वस्तुएँ जैसे मूर्तियाँ बर्तनादि) इत्यादि प्रसिद्ध है। राजस्थान में प्रचलित हस्तशिल्पों का परिचय निम्नांकित है :

मंसूरिया साड़ी

कोटा से 15 किमी. दूर बुनकरों का एक गाँव है, कैथून। कैथून के बुनकरों ने चौकोर बुनाई जाने वाली सादी साड़ी को अनेक रंगों और आकर्षक डिजाइनों में बुना है तथा सूती धागे के साथ रेशमी धागे, और जरी का प्रयोग करके साड़ी की अलग ही डिजाइन बनाई है। साड़ी का काम बुनकर अपने घर में खड्डी लगाकर करते है। पहले सूत का ताना बुना जाता है। फिर सूत या रेशम को चरखे पर लपेटकर लच्छियाँ बनाई जाती हैं। धागे को लकड़ियों की गिल्लियों पर लपेटा जाता है, फिर ताना–बाना डालकर बुनने का काम किया जाता है। वर्तमान में कोटा डोरिया साड़ी का निर्यात भी विदेशों में किया जा रहा है।

गलीचे और दरियाँ

जयपुर और टोंक का गलीचा उद्योग प्रसिद्ध है। सूत और ऊन के ताने–बाने लगाकर लकड़ी के लूम पर गलीचे की बुनाई की जाती है। बुनाई में जितना बारीक धागा और गाँठें होती हैं, गलीचा उतना ही खूबसूरत एवं मजबूत होता है। जयपुर के गलीचे गहरे रंग, डिजाइन और शिल्प कौशल की दृष्टि से प्रसिद्ध है। गलीचा महंगा होने के कारण आजकल दरियों का प्रचलन अधिक है। जयपुर और बीकानेर की जेलों में दरियाँ बनाई जाती हैं। जोधपुर, नागौर, टोंक, बाड़मेर, भीलवाड़ा, शाहपुरा, केकड़ी और मालपुरा दरी–निर्माण के मुख्य केन्द्र हैं। जोधपुर जिले के सालावास गाँव की दरियाँ बड़ी प्रसिद्ध है।

ब्ल्यू पॉटरी

जयपुर में ब्ल्यू पॉटरी निर्माण की शुरुआत का श्रेय महाराजा रामसिंह (1835–80 ई.) को है। उन्होंने चूड़ामन और कालू कुम्हार को पॉटरी का काम सीखने दिल्ली भेजा और प्रशिक्षित होने पर उन्होंने जयपुर में इस हुनर की शुरुआत की। बाद में कृपालसिंह शेखावत ने इस कला को देश–विदेश में पहचान दिलाई। ब्ल्यू पॉटरी के निर्माण के लिए पहले बर्तनों पर चित्रकारी की जाती है, फिर इन पर एक विशेष घोल चढ़ाया जाता है। यह घोल हरा काँच, कथीर, साजी, क्वार्ट्ज पाउडर और मुल्तानी मिट्टी से मिलाकर बनाया जाता है। चित्रकारी का प्रारूप तो बर्तनों पर पहले ही हाथ से बना लेते हैं, किन्तु यदि लाइनें खीचनीं हों तो चाक, पर रखकर ही लाइनें खींची जाती है। ब्ल्यू पॉटरी के रंगों में नीला, हरा, मटियाला और ताम्बाई रंग ही विशेष रूप से काम में लेते हैं।

बादले

जोधपुर के पानी भरने के बर्तन जो मैटल के बने होते हैं और जिन पर कपड़े या चमड़े की परत चढ़ाई जाती है, बादले कहलाते हैं। खूबसूरत रंगों और डिजाइन में बने बादले आकर्षक होते है।

टेराकोटा

पक्की मिट्टी का उपयोग करके मूर्तियाँ आदि बनाने की कला को टेराकोटा के नाम से जाना जाता है। लोक देवताओं की पूजा के साथ–साथ मिट्टी के खिलौने व मूर्तियाँ बनाने का काम पूरे प्रदेश में वर्षों से चल रहा है। नाथद्वारा के पास स्थित मोलेला गाँव इस कला का प्रमुख केन्द्र बना हुआ है। इसी प्रकार हरजी गाँव (जालौर) के कुम्हार मामाजी के घोड़े बनाते हैं। मोलेला तथा हरजी दोनों ही स्थानों में कुम्हार मिट्टी में गधे की लीद मिलाकर मूर्तियाँ बनाते हैं व उन्हें उच्च ताप पर पकाते हैं।

जड़ाई

जयपुर कीमती और अर्द्ध–कीमती पत्थरों की कटाई और जड़ाई के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ नगों की कटाई व जड़ाई पर मुगल और राजपूत शैली का प्रभाव है। अधिकतर जड़ाई का काम मुस्लिम जाति के कारीगरों के हाथ में है। इनका कौशल प्रशंसनीय है।

थेवा कला

थेवा कला काँच पर सोने का सूक्ष्म चित्रांकन है। काँच पर सोने की अत्यन्त बारीक, कमनीय एवं कलात्मक कारीगरी को 'थेवा' कहा जाता है। इसके लिए रंगीन बेल्जियम काँच का प्रयोग किया जाता है। थेवा के लिए चित्रकारी का ज्ञान आवश्यक होता है। अलग–अलग रंगों के काँच पर सोने की चित्रकारी इस कला का आकर्षण है। थेवा कला में नारी श्रृंगार के आभूषण एवं अन्य उपयोगी वस्तुएँ बनायी जाती है। विभिन्न देवी–देवताओं की प्रतिमाएँ भी थेवा कला से अलंकृत की जाती हैं। थेवा कला से अलंकृत आभूषणों का मूल्य धातु का न होकर कलाकार की कला का होता है। इस कला में सोना कम एवं मेहनत अधिक होती है। थेवा कला विश्व में केवल प्रतापगढ़ तक ही सीमित है।

दाबू प्रिन्ट

चित्तौड़गढ़ जिले का आकोला गाँव दाबू प्रिन्ट के लिए प्रसिद्ध है। रंगाई–छपाई में जिस स्थान पर रंग नहीं चढ़ाना हो, उसे लई या लुगदी से दबा देते हैं। यही लुगदी या लई जैसा पदार्थ 'दाबू' कहलाता है, क्योंकि यह कपड़े के उस स्थान को दबा देता है, जहाँ रंग नहीं चढ़ाना होता है। सवाई माधोपुर में मोम का, बालोतरा में मिट्टी का तथा सांगानेर व बगरू में गेहूँ के बींधण का दाबू लगाया जाता है। आकोला में रंगाई–छपाई के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ हैं। पानी, मिट्टी और वनस्पति जैसी आवश्यकताएँ स्थानीय रूप से उपलब्ध हैं आकोला के दाबू प्रिन्ट के बेडशीट, कपड़ा, चून्दड़ी व फेंटिया देश–विदेश में प्रसिद्ध हैं। चून्दड़ी एवं फेंटिया ग्रामीण क्षेत्रों में पसंद किया जाता है।

बंधेज

जयपुर का बंधेज प्रसिद्ध है। मनपसंद रंगों के डिजाइन प्राप्त करने के लिए कपड़े को बाँधकर फिर रंगा जाता है। बंधेज खोलने पर तरह–तरह के डिजाइन बन जाते है। यह कला 'बांधों और रंगों' (Tie & Die) के नाम से प्रसिद्ध है। राज्य में अनेक प्रकार के बंधेज प्रचलित हैं। चून्दरी और साफे पर बन्धेज का कार्य लोकप्रिय है।

चित्तौड़ में जाझम की छपाई की जाती है, जो पूरे राज्य में प्रसिद्ध है। यहीं गाड़िया लोहारों के लिए घाघरे–ओढ़नी भी तैयार किए जाते हैं। गोटे का काम जयपुर और खंडेला (सीकर) का प्रसिद्ध है। जरी के काम में भी जयपुर की पहचान है।

ऊस्तां कला

ऊँट की खाल पर स्वर्ण मीनाकारी और मुनव्वत का

कार्य 'ऊस्तां कला' के नाम से जाना जाता है। इस कला का विकास पदम्श्री से सम्मानित बीकानेर के हिस्सामुद्दीन उस्तां ने किया। ऊस्तां द्वारा बनाई गई कलाकृतियाँ देश–विदेश में प्रसिद्ध हैं। ऊँट की खाल से बनी कुप्पियों पर स्वर्ण दुर्लभ मीनाकारी का कलात्मक कार्य आकर्षक और मनमोह लेने वाला होता है। शीशियों, कुप्पियों, आइनों, डिब्बों, मिट्‌टी की सुराहियों पर यह कला उकेरी जाती है। बीकानेर का 'कैमल हाइड ट्रेनिंग सेंटर' ऊस्तां कला का प्रशिक्षण संस्थान है।

मीनाकारी

ज्वैलरी पर मीनाकारी के लिए जयपुर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विशिष्ट पहचान रखता है। जयपुर में मीनाकारी की कला महाराजा मानसिंह प्रथम (1589–1614 ई.) द्वारा लाहौर से लाई गई। परम्परागत रूप से सोने पर मीनाकारी के लिए काले, नीले, गहरे, पीले, नारंगी और गुलाबी रंग का प्रयोग किया जाता है। लाल रंग बनाने में जयपुर के मीनाकार कुशल हैं। मीनाकारी का कार्य मूल्यवान, अर्द्धमूल्यवान रत्नों तथा सोने–चांदी के आभूषणों पर किया जाता है। मीनाकारी में फूल–पत्ती, मोर आदि का अंकन प्रायः किया जाता है। सोने के आभूषणों के अतिरिक्त चाँदी के खिलौनों व आभूषणों पर भी मीनाकारी की जाती है। नाथद्वारा भी मीनाकारी का प्रसिद्ध केन्द्र है। कोटा के रेतवाली क्षेत्र में कांच पर विभिन्न रंगों से मीनाकारी का काम किया जाता है। बीकानेर और प्रतापगढ़ में भी यह काम दक्षता के साथ किया जाता है।

लाख का काम

सवाई माधोपुर, लक्ष्मणगढ़ (सीकर) व इन्द्रगढ़ (बून्दी) लकड़ी के खिलौने व अन्य वस्तुओं पर लाख के काम के लिए प्रसिद्ध हैं। लाख से चूड़ियाँ, चूड़े, पशु–पक्षी, पेन्सिलें, पैन, काँच जड़े लाख के खिलौने, बिछिया आदि तैयार किए जाते हैं।

रंगाई–छपाई

सांगानेर में छपाई का कार्य चूनड़ी, दुपट्‌टा, गमछा, साफा, जाजम, तकिया आदि पर किया जाता है। सांगानेरी छपाई लट्‌ठा या मलमल पर की जाती है। तैयार कपड़े पर विभिन्न डिजाइनों की छपाई की जाती है। इन छपे वस्त्रों को नदी में धोया जाता है। सांगानेर के पास अमानीशाह के नाले से अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ी प्रिन्ट में प्रायः काला और लाल दो रंग ही ज्यादा काम आते है। सांगानेरी प्रिन्ट को विदेशों में लोकप्रिय बनाने का श्रेय मुन्नालाल गोयल को है।

बगरु (जयपुर) की छपाई आजकल काफी लोकप्रिय है। यह प्रिन्ट सांगानेरी प्रिंट की ही तरह है परन्तु सांगानेरी छापे में आंगन सफेद होता है, जबकि बगरु प्रिन्ट का आंगन हरापन लिए होता है। बगरु की छपाई में रासायनिक रंगों का प्रयोग नहीं होता है।

बाड़मेर अजरक प्रिन्ट के लिए प्रसिद्ध है। अजरक प्रिंट में अधिकांश लाल और नीले रंगों से छपाई कार्य होता है। रंगाई–छपाई की दृष्टि से महिलाओं के लिए जोधपुर की चुनरी तथा जयपुर का लहरिया प्रसिद्ध है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुविकल्पात्मक प्रश्न

1. गरासिया जनजाति का प्रमुख नृत्य कौन सा है ?

   (अ) घुड़ला नृत्य (ब) वालर नृत्य

   (स) गैर नृत्य (द) गवरी नृत्य

2. किस क्षेत्र की रम्मतें अधिक प्रसिद्ध हैं ?

   (अ) जालौर (ब) जोधपुर

   (स) बीकानेर (द) नागौर

3. तलवार की धार पर नाचना, काँच के टुकड़ों पर नाचना, जमीन से मुँह द्वारा रूमाल उठाना किस नृत्य की विशेषता है ?

   (अ) ईडाणी (ब) शंकरिया

   (स) भवाई (द) पणिहारी

4. जानकी लाल भांड किस कला के प्रसिद्ध कलाकार हैं ?

   (अ) स्वांग (ब) फड़

   (स) तमाशा (द) ख्याल

5. भैरुजी के भोपे प्रमुख रूप से किस वाद्य यंत्र को बजाते हैं ?

   (अ) मशक (ब) भपंग

   (स) मंजीरा (द) मादल

6. फड़ बाँचते समय किस वाद्य यंत्र का प्रयोग किया जाता है ?

   (अ) रावणहत्था (ब) कामायचा

   (स) चिंकारा (द) अलगोजा

7. थेवा कला कहाँ की प्रसिद्ध है ?

   (अ) प्रतापगढ़ (ब) कुशलगढ़

   (स) माण्डलगढ़ (द) बसन्तगढ़

8. राज्य में रत्न उद्योग के लिए प्रसिद्ध केन्द्र है –

   (अ) जयपुर (ब) जोधपुर

   (स) उदयपुर (द) राजसमन्द

9. 'रम्मत' क्या है ?

   (अ) लोकनाट्य (ब) लोक वाद्य

   (स) लोक गीत (द) लोक शिल्प

10. ब्ल्यू पोटरी कला कहाँ की प्रसिद्ध है ?

   (अ) किशनगढ़ (ब) जयपुर

   (स) बालोतरा (द) अकोला

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. राजस्थान के चार लोक नृत्यों के नाम बताइये ?
2. तेरहताली नृत्य के नामकरण को स्पष्ट कीजिये ?
3. 'ख्याल' क्या है ?
4. फड़ में सामान्यतः किन लोक देवी–देवताओं का चित्रण मिलता है ?
5. ऊस्ता कला के दो प्रमुख बिन्दु बताइये।
6. राजस्थान के प्रसिद्ध त्योहार तीज एवं गणगौर पर किये जाने वाले नृत्य के दौरान गाये जाने वाले गीत के बोल बताइये।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. राजस्थान में रंगाई–छपाई के क्षेत्र में सांगानेर, बगरू एवं बाड़मेर का क्या महत्त्व है ?
2. थेवा कला को स्पष्ट कीजिये।
3. मोलेला क्यों प्रसिद्ध है ?
4. घूमर नृत्य की विशेषताएँ बताइये।
5. निम्न पर टिप्पणियाँ लिखिये –

   (i) गवरी नृत्य (ii) भवाई नृत्य

   (iii) रावण हत्था (iv) रम्मत

निबन्धात्मक प्रश्न

1. राजस्थान में प्रचलित लोक नाट्य कला का परिचय देते हुए चार प्रमुख लोक नाट्य कला का विस्तार में वर्णन कीजिये।
2. 'राजस्थान का हस्तशिल्प ऐतिहासिक एवं बहुविविध स्वरूप लिये हुए है।' कथन को स्पष्ट कीजिये।

□□□